ज्ञान तत्व 375
मंथन क्रमांक–88 ''कर्मचारी आंदोलन कितना उचित कितना अनुचित''

कोई भी शासक अपने कर्मचारियों के माध्यम से ही जनता को गुलाम बनाकर रख पाता है। लोकतंत्र मे तो यह और भी ज्यादा आवश्यक है। इसके लिये यह आवश्यक है की वे अपने कर्मचारियों को ज्यादा से ज्यादा संतुष्ट रखे। भारत में स्वतंत्रता पूर्व के शासक समाज को गुलाम बनाकर रखने के उद्देश्य से सरकारी कर्मचारियों को अधिक से अधिक सुविधाएँ देने की नीति पर काम करते रहे। स्वतंत्रता के बाद भी शासन की नीयत में कोई बदलाव नहीं आया। इसलिये उनकी मजबूरी थी की वे अपने कर्मचारियों को ज्यादा से ज्यादा सुविधाएँ भी दें और संतुष्ट भी रखें।

प्रारंभिक वर्षों में सरकारी कर्मचारियों में असंतोष नही के बराबर था किन्तु जब उन्होंने देखा कि भारत का राजनेता सरकारी धन सम्पत्ति को दोनों हाथों से लूटने और लुटाने में लगा है तो धीरे धीरे इनके मन में भी लूट के माल में बंटवारे की इच्छा बढ़ी। सरकार के संचालन में राजनैतिक नेताओं के पास निर्णायक शक्ति होने के बाद भी उन्हें हर मामले में कर्मचारियों की सहायता की आवश्यकता होती थी क्योंकि संवैधानिक ढांचे के चेक और बैलेन्स सिस्टम में कर्मचारी भी एक पक्ष होता है। अतः व्यक्तिगत रूप से कर्मचारी लोग नेताओं के भ्रष्टाचार के सहायक और हिस्सेदार होते चले गये। किन्तु यदि हम भ्रष्टाचार की चर्चा न भी करें तो शासकीय कर्मचारी अपने पास अधिकार होते हुए भी एक पक्ष को इस तरह अकेले अकेले खाते नहीं देख सकता था। अतः उसने धीरे धीरे दबाव बनाना शुरू किया। दूसरी ओर सरकार ने भी नये नये विभाग बनाकर इनकी संख्या बढ़ानी शुरू कर दी और ज्यों ज्यों सरकारी कर्मचारियों की संख्या आबादी के अनुपात से भी कई गुना ज्यादा बढ़ने लगी त्यों त्यों उनकी ब्लैकमेलिंग की क्षमता भी बढ़ती चली गई। इस तरह भारत में लोक और तंत्र के बीच एक अघोषित दूरी बढ़ती चली गई जिसमें सरकार समाज की स्वतंत्रता की लूट करती रही, नेता भ्रष्टाचार के माध्यम से लूट लूट कर अपना घर भरते रहे और शासकीय कर्मचारी ब्लैकमेल करके इस लूट के माल में अपना हिस्सा बढ़ाते रहे।

किसी सरकारी कर्मचारी को इस बात से कोई मतलब नहीं कि उसकी जरूरतें क्या हैं? न ही उसे इस बात से मतलब है कि भारत के आम नागरिक का जीवन स्तर क्या है। उसे इस बात से भी मतलब नहीं कि उसी के समकक्ष गैर सरकारी कर्मचारी के वेतन और सुविधाओं की तुलना में उसे प्राप्त वेतन और सुविधाएँ कितनी ज्यादा हैं। उसे तो मतलब है सिर्फ एक बात से कि लोकतांत्रिक भारत में जो धन और अधिकारों की लूट मची है उस लूट में उसकी भी सहभागिता है। उस लूट के माल में हिस्सा मांगना उसका न्यायोचित कार्य है। यदि ठीक से सोचा जाये तो उसका तर्क गलत भी तो नहीं है। कर्मचारी लोक का तो भाग है नहीं। है तो वह तंत्र का ही हिस्सा। फिर वह अपने हिस्से की मांग से पीछे क्यों रहे? कुछ प्रारंभिक वर्षों में शिक्षक और न्यायालयों से संबद्ध लोग ऐसा करना अनुचित मानते थे किन्तु अब तो वे भी धीरे धीरे उसी तंत्र के भाग बन गये हैं। न्यायपालिका और विधायिका का वर्तमान टकराव तथा न्यायपालिका मे आपसी टकराव स्पष्ट प्रमाणित करता है कि सब जगह पावर या धन के अतिरिक्त समाज सेवा का नाम सिर्फ ढोंग है जो समय समय पर लोक को धोखा देने के लिये उपयोग किया जाता है।

सरकारी कर्मचारी अपना वेतन भत्ता बढ़वाने के लिये कई तरह के मार्ग अपनाते हैं। उसमें मंहगाई का आकलन भी एक है। भारत में स्वतंत्रता के बाद के सत्तर वर्षों में रोटी, कपड़ा, आवागमन, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में औसत साठ पैसठ गुने की वृद्धि ही हुई है लेकिन सरकारी आंकड़े बताते हैं कि स्वतंत्रता के बाद छियानवे गुनी मूल्य वृद्धि हो चुकी है। छियानवे गुनी वेतन वृद्धि तो इनकी जायज मांग मान ली जाती है। यदि भारत में आवश्यक वस्तुओं के औसत मूल्य पांच प्रतिशत बढ़ते हैं तो सरकारी आंकड़े उन्हें सात आठ दिखाते हैं क्योंकि आंकड़े बनाने में कुछ और भी अनावश्यक चीजें शामिल कर दी जाती हैं। इसके बाद भी कई तरह के दबाव बनाकर इनके वेतन और सुविधाओं में वृद्धि होती ही रही है। स्वतंत्रता के बाद आज तक समकक्ष परिस्थितियों में सरकारी कर्मचारी का वेतन करीब दो सौ से ढाई सौ गुना तक बढ़ गया है। उपर से प्राप्त सुविधाओं को तो जोड़ना ही व्यर्थ है। समाज इस पर उंगली उठा नहीं सकता क्योंकि जब नेता ने अपना वेतन भत्ता इनसे भी ज्यादा बढ़ा लिया तथा नेता ने अपनी उपरी आय भी बढ़ा ली तो कर्मचारी बेचारा क्यो न बढावे? सरकार और नेता सरकारी कर्मचारियों की ब्लैकमेलिंग से बचने के लिये कभी निजीकरण का मार्ग निकालते हैं तो कभी संविदा नियुक्ति जैसा। तू डाल डाल मैं पात पात की तर्ज पर कर्मचारी भी किसी न किसी रूप में इन तरीकों की काट खोजते रहते हैं। और यदि शेष समय में कर्मचारी दब भी जावे तो चुनावी वर्ष में तो वह अपना सारा बकाया सूद ब्याज समेत वसूल कर ही लेता है। अभी कुछ प्रदेशों और केन्द्र के चुनाव होने वाले हैं। कर्मचारी लंगोट कसकर चुनावों की प्रतीक्षा कर रहा है। चुनावों से एक वर्ष पूर्व ही उसकी

सांकेतिक हड़ताल और अन्य कई प्रकार के नाटक शुरू हो जायेंगे। प्रारंभ में सरकार भी उन्हें दबाने का नाटक करेगी। कुछ लोगों का निलम्बन और कुछ की बर्खास्तगी भी होगी। समझौता वार्ता भी चलेगी और अन्त में कर्मचारियों की कुछ मांगे मान कर आंदोलन समाप्त हो जायेगा। हड़ताल अवधि में की गई सारी प्रशासनिक कार्यवाही वापस हो जायेगी क्योंकि सभी नेता जानते हैं कि कर्मचारी चुनावों में जिसे चाहें उसे जिता या हरा सकते हैं। यद्यपि कर्मचारियों की कुल संख्या मतदाताओं की तीन प्रतिशत के आस पास ही होती है किन्तु उनके परिवार, उनके गांव गांव तक फेलाव और उनके एकजुट प्रयत्नों को मिलाकर यह अन्तर सात आठ प्रतिशत तक माना जाता है। आम तौर पर शायद ही कोई नेता हो जो इतना अधिक लोकप्रिय हो कि इतना बड़ा फर्क झेल सके अन्यथा दो तीन प्रतिशत का फर्क ही हार जीत के लिये निर्णायक हो सकता है। नेता को हर पांच वर्ष में जनता का समर्थन आवश्यक होता है जबकि सरकारी कर्मचारी को किसी प्रकार के जनसमर्थन की जरूरत नहीं। चुनावों के समय नेताओं के दो तीन गुट बनने आवश्यक हैं जबकि ऐसे मामलों में सभी कर्मचारी एक जुट हो जाते हैं। फिर उपर से यह भी कि कर्मचारियों को सुविधा देने से नेता को न व्यक्तिगत हानि है न सरकारी क्योंकि अन्ततोगत्वा सारा प्रभाव तो जनता को झेलना है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि नेता स्वयं अपनी सब प्रकार की सुख सुविधाऍं बढ़ाता जाता है तो उसका नैतिक पक्ष भी मजबूत नहीं रहता। यही कारण है कि कर्मचारियों का पक्ष जनविरोधी, अनैतिक ब्लैकमेलिंग होते हुए भी नेता झुककर उनसे समझौता करने को मजबूर हो जाता है।

अधिकांश कर्मचारी नौकरी पाते समय ही भारी रकम देकर नौकरी पाते हैं। बहुत कम ऐसे होते हैं जो बिना पैसे या सिफारिश के नौकरी पा जायें। स्वाभाविक है कि उनसे इमानदारी या चरित्र की उम्मीद नहीं की जा सकती। जो व्यक्ति घर के बर्तन या जमीन बेचकर एक नौकरी पाता है वह भ्रष्टाचार भी करेगा और ब्लैकमेलिंग भी करेगा। यदि नहीं करेगा तो परिवार से भी तिरस्कृत होगा और अन्य कर्मचारियों में भी मूर्ख ही माना जायेगा। ऐसी विकट परिस्थिति आज सम्पूर्ण भारत की है। चाहे केन्द्र सरकार के कर्मचारी हों या प्रदेश सरकार के। सबकी स्थिति एक समान है। चाहे हवाई जहाज के पायलट हो या बैंक कर्मचारी या कोई चपरासी। चाहे दस हजार रूपया मासिक वाला छोटा कर्मचारी हो या लाख दो लाख रूपया मासिक वाला सुविधा सम्पन्न कर्मचारी। सबकी मानसिकता एक समान है, सबकी एक जुटता एक समान है, सब स्वयं को तंत्र का हिस्सा मानते हैं। लोक को गुलाम बनाकर रखने में भी सब एक दूसरे के सहभागी हैं और लोक को नंगा करने में भी कभी किसी को कोई दया नहीं आती।

कोई भी सरकार चाहे कितना भी जोर लगा दे चुनाव के समय उसे कर्मचारियो के समक्ष झुकना ही पडेगा । 130 करोड की आबादी मे 127 करोड लोक के लोग है तो 3 करोड तंत्र से जुडे। इसमे भी नेताओ की कुल संख्या कुछ लाख तक सीमित है। ये ढाई करोड कर्मचारी तो परिस्थिति अनुसार एक जुट हो जाते है किन्तु पचास लाख राजनेता चुनावो के समय दो गुटो मे बट जाते है। इस समय उन्हे न देश दिखता है न समाज । इस समय उन्हे न न्याय दिखता है न व्यवस्था । उन्हे दिखता है सिर्फ चुनाव और किसी भी परिस्थिति मे वे मुठठी भर संगठित कर्मचारियों का समर्थन आवश्यक समझते है। यही कारण है कि 127 करोड का लोक इन नेता और कर्मचारी के चक्रव्यूह से अपने को कभी बचा नही पाता।

विचारणीय प्रश्न यह है कि इस स्थिति से निकलने का मार्ग क्या है? नेता चाहता है कि जनता सरकारी कर्मचारियों के खिलाफ खड़ी हो। यह संभव नहीं क्योंकि जनता ने तो नेता को चुना है और नेता द्वारा बनाई गई व्यवस्था द्वारा सरकारी कर्मचारी नियुक्त होते हैं। कर्मचारियों की नियुक्ति में जनता का कोई रोल नहीं होता। जनता जब चाहे कर्मचारी के विरूद्ध कुछ नहीं कर सकती जब तक उसका काम नियम विरूद्ध न हो। दूसरी ओर नेता को जो शक्ति प्राप्त है वह जनता की अमानत है। जनता जब चाहे नेता को बिना कारण हटा सकती है। ऐसी स्थिति में कर्मचारियों के विरूद्ध जन आक्रोश का कोई परिणाम संभव नहीं। उचित तो यही है कि इस विकट स्थिति से निकलने की शुरूआत नेता से ही करनी पड़ेगी। यदि कर्मचारी ब्लैकमेल करता है तो उसका सारा दोष नेता का है। नेता ही समाज के प्रति उत्तरदायी है। यही मानकर आगे की दिशा तय होनी चाहिये।

यह स्पष्ट है कि नेता कर्मचारी का गठबंधन टूटना चाहिये और अनवरत काल तक कभी टूटेगा नही । यदि नेता चाहे भी तो टूट नही सकेगा। इसका सबसे अच्छा समाधान सिर्फ निजीकरण है। अनावश्यक विभाग समाप्त हो राज्य सुरक्षा और न्याय तक सीमित हो कर्मचारियो की संख्या अपने आप कम हो जायेगी। राज्य रोजगार और नौकरी की अबतक चली आ रही परिभाषाओ को बदले । राज्य का काम रोजगार के अवसर पैदा करना होता है न कि नौकरी के माध्यम से रोजगार देना । यह तो गुलामी काल की परिभाषा थी जिसे अब तक बढाया जा रहा है। मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता है और इसके लिये जनजागरण करना होगा । कोई भी सरकारी कर्मचारी जान दे देगा किन्तु निजीकरण नही होने देगा। कोई भी नेता भले ही निजीकरण की बात करे किन्तु

घुमफिर कर निजीविभागो पर अनावश्यक नियंत्रण करके उन्हे परेशान करेगा जिससे वे तंत्र के चंगुल मे बने रहे। समस्या विकट है समाधान करना होगा और इसके लिये जनजागरण ही एक मात्र मार्ग है।

मंथन क्रमांक 89 ''हिन्दू संस्कृति या भारतीय संस्कृति''

धर्म और संस्कृति कुछ मामलो मे एक दूसरे के पूरक भी होते है और कुछ मामलो मे अलग अलग भी। धर्म दूसरे के प्रति किये जाने वाले हमारे कर्तब्य तक सीमित होता है। जबकि संस्कृति का प्रभाव दूसरो के प्रति किये जाने वाले कार्य पर निर्भर होता है, चाहे वह कार्य अच्छा हो या बुरा। कोई व्यक्ति बिना सोचे तत्काल किसी कार्य को बार बार करने लगता है तब वह उस व्यक्ति की आदत मान ली जाती है। ऐसी आदत लम्बे समय तक चलती रहे तब वह संस्कार बन जाती है। ऐसे संस्कार किसी इकाई के अधिकांश लोगो के हो जावे तब वह उस इकाई की संस्कृति मान ली जाती है। सोच समझकर लिया गया निर्णय और तदनुसार किया गया कार्य संस्कार नही माना जाता है । धर्म व्यक्तिगत होता है समूह गत नही होता जबकि संस्कृति समूहगत होती है व्यक्तिगत नहीं।

हिन्दू संस्कृति और भारतीय संस्कृति को लगभग एक ही बताया जाता है इसलिये दोनो के बीच अंतर करना बहुत कठिन कार्य है। किन्तु मुझे दोनो के बीच मे बहुत अंतर दिखता हैं इसलिये मै इस विषय की विस्तृत समीक्षा कर रहा हूँ। करीब एक हजार वर्ष पहले जब तक भारत मे विदेशी गुलामी नही आयी थी तब तक भारतीय संस्कृति और हिन्दू संस्कृत एक मानी जाती थी । इस संस्कृति मे जैन बौद्ध सिख आर्य वैदिक और सनातनी मिलकर माने जाते है। जबसे भारत मे इसाई और मुसलमान शासक के रूप मे स्थापित हुए उस समय से हिन्दू संस्कृति पर धीरे धीरे विदेशी संस्कृति का प्रभाव पडना शुरू हुआ। स्वाभाविक है कि प्राचीन संस्कृति मे धीरे धीरे विदेशी संस्कृति की मिलावट हुई और स्वतंत्रता के बाद जब उस संस्कृति मे साम्यवाद शामिल हुआ तब वह मिलावट बहुत ज्यादा हो गई। इसलिये स्पष्ट है कि हिन्दू संस्कृति और भारतीय संस्कृति मे इतना अधिक अंतर हो गया कि दोनो मे समानता खोजना ही बहुत कठिन हो गया।

हम भारत की प्राचीन संस्कृति को हिन्दू संस्कृति के नाम से नामकरण कर रहे है । प्राचीन संस्कृति मे विचार प्रधान होता था और विचारो के आधार पर निकले निष्कर्ष को शेष समाज अपनी संस्कृति के रूप मे विकसित करता था। हिन्दू संस्कृति मे त्याग महत्वपूर्ण था, गुलामी के बाद विकसित भारतीय संस्कृति मे त्याग की जगह संग्रह प्रधान बन गया। विचारो के स्थान पर भी सत्ता और धन महत्वपूर्ण हो गये। वर्तमान भारतीय संस्कृति मे स्पष्ट देखा जा सकता है कि धन और पद के लिये इतनी अधिक छीना झपटी हो गई है कि हर नई पीढी का सदस्य धन और पद की छीना झपटी मे इस तरह लग गया है कि उसे नैतिकता या अनैतिकता की न कोई चिंता है न ज्ञान। इसी तरह हिन्दू संस्कृति मे वर्ग समन्वय महत्वपूर्ण था। कोई भी समूह सख्या विस्तार को महत्व नही देता था बल्कि हर समूह गुण प्रधानता को अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। भारतीय संस्कृति मे हिन्दू संस्कृति के ठीक विपरीत संख्या विस्तार को महत्व दिया जाने लगा । येन केन प्रकारेण हिन्दू संस्कृति के लागो की मान्यता और विश्वास को बदलकर उसे अपने साथ ले लेने को महत्व दिया गया । दुनिया मे हिन्दू संस्कृति आज तक ऐसा कीर्तिमान बनाये हुए है कि वह किसी अन्य संस्कृति के व्यक्ति को किसी तरह अपने साथ शामिल करने का प्रयत्न नही करती। अन्य विदेशी संस्कृतियां इन सब प्रयत्नो मे कितना भी नीचे उतरने के लिये तैयार रहती है। हिन्दू संस्कृति गुलामी सह सकती है किन्तु गुलाम नही बना सकती । वर्तमान भारतीय संस्कृति गुलामी सह तो सकती ही नही है बल्कि गुलाम बनाने को अपनी सफलता मानने लगी है। यही कारण है कि वर्तमान भारतीय संस्कृति मे निरंतर हिंसा के प्रति विश्वास बढ रहा है। यह भी प्रत्यक्ष है कि हिन्दू संस्कृति अपने को सुरक्षात्मक मार्ग पर आगे बढ रही है तो भारतीय संस्कृति विस्तार वादी नीति पर चल रही है। हिन्दू संस्कृति का पक्षधर एक महत्वपूर्ण अंश संघ परिवार के नाम से भारतीय संस्कृति के मार्ग पर तेजी से बढने का प्रयास कर रहा है। नई पीढी शराफत को छोडकर अधिक से अधिक चालाक बनने की ओर अग्रसर है। वर्तमान भारतीय संस्कृति एक मुख्य पहचान बना चुकी है कि मजबूत से दबो और कमजोर को दबाओ। इसका प्रमुख कारण है कि प्राचीन हिन्दू संस्कृति मे संगठन का कोई महत्व नही था जबकि वर्तमान भारतीय संस्कृति मे सगठन को ही सबसे अधिक सफलता का मापदंड मान लिय ागया है। गर्व के साथ संधे शक्ति कलौ युगे का खुले आम नारा लगाया जाता है। मै समझता हूँ कि हिन्दू संस्कृति पर आये विस्तारवादी संकट से सुरक्षा की आवश्यकता समझकर कुछ लोगो ने यह नारा लगाया है कि किन्तु यह नारा हिन्दू संस्कृति की परंपरा और पहचान के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता। प्राचीन संस्कृति मे व्यवस्था प्रमुख थी, राजनैतिक व्यवस्थ का हस्तक्षेप सामाजिक व्यवस्था मे न्युनतम था। दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था भी राजनैतिक व्यवस्था मे हस्तक्षेप नही करती थी। वर्तमान भारतीय संस्कृति मे धन और सत्ता इतने महत्व पूर्ण हो गये है कि इन्होने मिलकर पूरे समाज को ही गुलाम बना दिया । प्राचीन हिन्दू संस्कृति लगभग सत्ता निरपेक्ष थी लेकिन वर्तमान भारतीय संस्कृति पूरी तरह सत्ता और धन सापेक्ष हो गई है। हिन्दू संस्कृति

मे वसुधैव कुटुम्बकम सर्वधर्म समभाव का महत्व था। उस समय धर्म और राष्ट्र की तुलना मे समाज को सर्वाधिक महत्व पूर्ण माना जाता था। धर्म और राज्य समाज के सहायक होते थे । वर्तमान भारतीय संस्कृति मे समाज और धर्म की परिभाषा भी बदल दी गई और महत्व भी बदल दिया गया। अब समाज की जगह या तो धर्म को उपर माना जाता है या राष्ट को। धर्म का अर्थ गुण प्रधान से बदलकर पहचान प्रधान हो गया है तो राष्ट का अर्थ बदलकर राज्य तक सीमित हो गया है। अब समाज सर्वोच्च तो रहा ही नही । हमारी प्राचीन संस्कृति मे नैतिक प्रगति को भौतिक उन्नति की तुलना मे अधिक महत्व दिया जाता था। वर्तमान भारतीय संस्कृति मे नैतिक पतन की तो कोई चिंता ही नही है। भौतिक उन्नति ही सब कुछ मान ली गई है। इस तरह यदि हम वर्तमान भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण व्याख्या करे तो उसमे दो निष्कर्ष निकलते है। 1 कमजोर को दबाना और मजबूत से दबना। 2 कम से कम परिश्रम और अधिक से अधिक लाभ का प्रत्यन करना । दोनो दिशाओ मे भारत दूनिया के अन्य देशो की तुलना मे अधिक तेज गति से छलांग लगा रहा है।

हम इसके कारणो पर विचार करे तो पायेंगे कि हमारी प्राचीन संस्कृति की सुरक्षा के लिये धर्मगुरू और राजनेता महत्वपूर्ण हुआ करते थे। सम्पूर्ण समाज इन दो के पीछे चला करता था। आज भी सम्पूर्ण समाज तो इन दो के पीछे चल रहा है किन्तु इन दोनो की नीयत खराब हो गई है। धर्मगुरू भी समाज को गुलाम बनाने का प्रयास कर रहे है जबकि उन्हे मार्ग दर्शन देना चाहिये था तो सत्ता भी गुलाम बनाने का प्रयास कर रही है जबकि उन्हे सुरक्षा और न्याय की गारंटी देनी चाहिये थी। हमारी प्राचीन हिन्दू संस्कृति मे प्रत्येक व्यक्ति को सुरक्षा और न्याय की गारंटी थी, प्रत्येक व्यक्ति को मौलिक अधिकार प्राप्त थे। समाज किसी को भी अनुशासित तो कर सकता था किन्तु दंडित नही कर सकता था । वर्तमान संस्कृति मे समाज विदेशियो की नकल करके दंडित करना सीख गया तो राज्य समाज के हाथ से अनुशासित करने के अधिकार को भी छीन चुका है। अब खाप पंचायते दंड भी देने लग गई है तो राज्य समाज को बहिष्कार के अधिकार से भी वंचित कर रहा है।

प्राचीन और वर्तमान संस्कृति मे आये बदलाव का परिणाम साफ दिख रहा है। परिवार व्यवस्था टूट रही है। राज्य व्यवस्था भी अव्यवस्था की तरफ जा रही है। सुरक्षा और न्याय पर से विश्वास घटकर सामाजिक हिंसा पर विश्वास बढ रहा है। लोकतंत्र की जगह तानाशाही की आवश्यकता महसूस हो रही है। सम्पूर्ण समाज किं कर्तब्य विमूढ की स्थिति मे है। वह अपनी गौरव शाली प्राचीन संस्कृति का अनुकरण करके ठगा जाता रहे अथवा वर्तमान भारतीय संस्कृति के साथ घुल मिलकर समाज को ठग ले यह निश्चय करना कठिन हो रहा है। ऐसी परिस्थिति मे क्या करना चाहिये यह बहुत कठिन है। न तो हम ठगे जाने तक की शराफत की सलाह दे सकते है न ही ठग लेने तक की चालाकी को हम अच्छा मान सकते है। इसलिये जो कुछ हमारी हिन्दू संस्कृति का आधार है उसका ही आखं मूदंकर अनुकरण किया जाये इससे मै सहमत नही। साथ ही मै इस धारणा के भी विरूद्ध हूँ कि जो कुछ पुराना है वह पूरी तरह रूढिवादी है , विकास विरोधी है और उसे आंख मुदकर बदल देना चाहिये । मै तो इस मत का हूँ कि हम शराफत और चालाकी की जगह समझदारी से काम ले अर्थात प्राचीन हिन्दू संस्कृति और वर्तमान भारतीय संस्कृति के सैद्धान्तिक गुण दोषो की विवेचना करके उन्हे व्यावहारिक धरातल की कसौटी पर कसा जाये। उसके बाद कोई मार्ग समाज को दिया जाये इस संबंध मे मेरा विचार यह है कि सबसे पहले पूरे भारत मे इस धारणा को विकसित किया जाये कि समाज सर्वोच्च है धर्म और राष्ट्र उसके सहायक या प्रबंधक है । परिवार को समाज की प्राथमिक और अनिवार्य इकाई माना जाये । अर्थात प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी के साथ मिलकर सहजीवन मे जीवन जीने की शुरूआत करनी होगी । परिवार के बाद गांव को भी व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण इकाई माना जाये। भारतीय संविधान मे से धर्म और जाति की जगह परिवार ओर गांव को शामिल किया जाये । व्यवस्था के मार्गदर्शन का अंतिम अधिकार धर्मगुरूओ तथा राजनेताओ से निकाल कर संपूर्ण समाज की भूमिका महत्वपूर्ण की जाये। इसका अर्थ हुआ कि संविधान संशोधन के अंतिम अधिकार तंत्र से निकालकर लोक को अथवा लोक द्वारा बनायी गई किसी व्यवस्था को दिया जाये जिसमे तंत्र से जुडी किसी इकाई का कोई हस्तक्षेप न हो । यहां से हम शुरूआत करे तो आगे आगे कुछ और मार्ग निकल सकते है जिसके परिणाम स्वरूप प्राचीन संस्कृति और वर्तमान संस्कृति के बीच का कोई संशोधित मार्ग निकल सकता है जो हमारे लिये आदर्श बने ।

मंथन क्रमांक 90 ''भारतीय समाज मे हिंसा पर बढता विश्वास''

कुछ सर्व स्वीकृत सिद्धान्त है।

1 पूरी दुनियां मे आदर्श सामाजिक व्यवस्था हिंसा को अंतिम शस्त्र मानती है और राजनैतिक व्यवस्था पहला शस्त्र ।

2 हिन्दू संस्कृति मे वर्ण व्यवस्था का निर्धारण गुण कर्म स्वभाव के अनुसार होता है। चार वर्ण ब्राम्हण क्षत्रिय वैश्य और शुद्र मे से सिर्फ एक क्षत्रिय को ही हिंसा की सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है। अन्य तीन के लिये हिंसा प्रतिबंधित है।

3 इस्लाम और साम्यवाद हिंसा को पहला शस्त्र मानते है । इसाई और हिन्दू अंतिम शस्त्र।

4 जब किसी व्यक्ति के किसी मौलिक अधिकार पर हिंसक आक्रमण होता है और न्याय का कोई मार्ग उपलब्ध न हो तभी हिंसा की विशेष अनुमति होती है, अन्यथा नही।

5 किसी भी सरकार को छत्रिय प्रवृत्ति का माना जाता है। अर्थात न्याय और सुरक्षा के लिये उसे हिंसा को पहला शस्त्र मानने का अधिकार है।

6 किसी भी विद्वान व्यवसायी अथवा श्रमिक को कभी भी किसी भी परिस्थिति मे हिंसा का सहारा नही लेना चाहिये।

7 यदि पूरी तरह गुलामी हो ओर मुक्ति का मार्ग न दिखे तब हिंसा या अहिंसा के मार्ग मे से एक चुना जा सकता है । लोकतंत्र मे अहिंसा के अतिरिक्त कोई अलग मार्ग नही है।

8 क्रान्तिकारियो ने गुलामी काल मे हिंसा का मार्ग चुना था। वर्तमान समय मे वे हिंसा का पूरी तरह विरोध करते ।

पूरी दुनियां मे हिंसा के प्रति विश्वास बढ रहा है । सत्ता के दो केन्द्र इस प्रकार बन रहे है कि ये दो जब चाहे तब सारी दुनियां को विश्व युद्ध मे ले जा सकते है। सारी दुनिया के कई अरब लोग मिलकर भी इन्हे विश्व युद्ध से नही रोक सकते। लेकिन पुरी दुनिया की अपेक्षा भारत की स्थिति कुछ ऐसी है कि यहां सामाजिक वातावरण मे भी हिंसा के प्रति विश्वास बढ रहा है। सफलता के लिये फर्स्ट अटैक इज वेल डिफेन्स को सिद्धान्त के रूप मे स्वीकार कर लिया गया है। किसी एक्सीडेन्ट मे आग लगाना तोड फोड करना और हिंसा करना गुंडागर्दी के स्थान पर मजबूरी माना जाने लगा है। हिंसा करने के उददेश्य से गलतियो के बहाने खोजे जा रहे है। गंभीर मरीज अस्पताल मे आते ही मर जाये तो डाक्टरो और नर्सो के साथ हिंसक वर्ताव प्रतिदिन दिखता है। कानून का पालन करने वाले राजनेता प्रतिदिन हिंसक तरीके से कानून तोडते है किन्तु उसे गुडागर्दी नही कहा जाता । न्यायालयो मे कानून की दुहाई देने वाले वकील भी सडको पर घूम घूम कर कानून तोडना अपना अधिकार समझते है। यहां तक कि सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश भी अब न्यायालय छोडकर मीडिया से अपनी शिकायत करने लगे है। अपराधी कई कई बार अपराध करने के बाद भी न्यायालय से निर्दोष या जमानत पर बाहर धूमते है और पूलिस ऐसे लोगो को कभी वास्तविक तो कभी फर्जी एनकाउंटर मे मार गिराती है। न्यायालय कानून की बात करते समय बाल की खाल निकालता है तो सरकारे सुरक्षा देने के लिये अधिक से अधिक एन्काउंटर करने को अपनी सफलता घोषित करती है। जब मौलिक अधिकारो पर हिंसक आक्रमण होता हो और न्याय प्राप्ति का कोई मार्ग उपलब्ध न हो तभी हिंसा मजबूरी मानी जा सकती है, अन्यथा नही। मार्ग भी दो प्रकार के है । सामाजिक 2 कानूनी। दोनो ही प्रकार के प्रयत्न किये जा सकते है। तानाशाही से मुक्ति के लिये कभी हिसा का सहारा लिया जा सकता है। किन्तु लोकतंत्र मे कानून के अतिरिक्त किसी प्रकार की हिंसा का किसी भी परिस्थिति मे कोई औचित्य नही है क्योकि न्याय के सामाजिक तथा कानूनी मार्ग पूरी तरह उपलब्ध होते है। इसके बाद भी भारत मे लगातार हिंसा बढ रही है। भविष्य मे भी कम होने की कोई संभावना नही दिखती।

भारत के आम नागरिको मे हिंसा का पक्ष मजबूत किया गया है। बार बार यह बात दुहराई जाती है कि कायरता की अपेक्षा हिंसा अच्छी होती है किन्तु कभी यह नही बताया जाता कि हिन्सा की अपेक्षा अहिंसा अच्छी होती है। कभी कायरता और अहिंसा को ठीक ढंग से परिभाषित भी नही किया गया। इस मामले मे भारतीय वातावरण को खराब करने मे गांधीवादियो का सबसे अधिक योगदान है। गांधीवादियो ने आजतक सिर्फ गांधी की नकल की लेकिन कभी गांधी को नही समझा। भारत का हर गांधीवादी लगभग कायर होता है । वह अहिंसा के पक्ष मे इस प्रकार खुलकर बोलता है कि जैसे वह सबसे बडा अहिंसा का पक्षधर हो किन्तु हिंसक नक्सलवादियों और उग्रवादी मुसलमानो के पक्ष मे सबसे पहले गांधीवादी ही खडे होते है। उन्हे इस्लाम और साम्यवाद की हिंसा नही दिखती किन्तु हिन्दुओ या संघ परिवार की हिंसा बहुत बडी समस्या के रूप मे दिखाई देती है। दुसरी बात यह भी है कि भारत मे तंत्र से जुडा हर व्यक्ति सामाजिक हिंसा का समर्थन करता है। महिलाओ को अपनी सुरक्षा के लिये हिंसा का सहारा लेने के लिये बाकायदा ट्रेनिंग दी जाती है। गरीबों अछूतों आदिवासियो तक को कानून की तुलना मे प्रत्यक्ष मुकाबला करने की सलाह दी जाती है। पारिवारिक वातावरण से भी बचपन मे ही हिंसा की ट्रेनिंग मिलने लगती है। बच्चो को सिखाया जाता है कि गलत बात बर्दास्त नही करनी चाहिये। उन्हे यह ट्रेनिंग नही दी जाती कि गलत बात का विरोध करने का सामाजिक और संवैधानिक क्या तरीका है और विरोध करने की सीमाएं क्या है। बचपन से ही बच्चे को गाय और शेर की प्रवृत्ति मे शेर बनना अधिक अच्छा बताया जाता है । गाय को कायरता का और शेर को बहादुरी का मापदंड घोषित किया जाता है। विचार परिवर्तन के लिये विचार मंथन की जगह विचार प्रचार का सहारा लिया जाता है। एक झूठ को बार बार बोलकर सच सिद्ध कर दिया जाता है। किसी भी हिंसा को कभी भी मजबूरी के रूप मे बदलकर न्योचित बता देना आम बात हो गई है।

आम नागरिक राज्य से सुरक्षा और न्याय की उम्मीद करता है। जब उसे राज्य से सुरक्षा और न्याय नही मिलता तब वह सुरक्षा और न्याय के लिये व्यक्तिगत प्रयास करता है और व्यक्तिगत प्रयास ही धीरे धीरे हिंसक वातावरण मे बदल जाते है।

समाज मे हिंसा के बढते वातावरण का मुख्य कारण राज्य मे अहिंसा का बढता प्रभाव माना जाना चाहिये। राज्य यदि समुचित बल प्रयोग न करके न्यूनतम बल प्रयोग का सहारा लेगा तब परिणाम स्वरूप समाज मे हिंसा बढेगी ही। वर्तमान समय मे भारत विचारो के अभाव का देश बन गया है। जो भारत पहले दुनिया को विचारो का निर्यात करता था। वही भारत अब दुनियां से विचारो की नकल करता है। यहां तक कि भारत का संविधान भी पूरी तरह नकल पर आधारित है। भारत की न्यायपालिका इस प्रकार विदेशो की नकल करती है कि चाहे निन्यानवे अपराधी छूट जाये किन्तु किसी निरपराध को दंडित नही होना चाहिये। अपने को निर्दोष सिद्ध करने का दायित्व अपराधी पर न डालकर पुलिस पर डाल दिया जाता है। पुलिस द्वारा घोषित अपराधी को संदिग्ध अपराधी न मानकर निर्दोष माना जाता है। पुलिस और न्यायालय ओभर लोडेड कर दिये गये है किन्तु इन दोनो विभागो के खर्चे का कुल बजट एक प्रतिशत से भी कम रहता है जबकि शिक्षा पर ही छ प्रतिशत का बजट लग जाता है। सरकारे भी न्याय और सुरक्षा के साथ हमेशा सौतेला व्यवहार करती है। बलात्कार की तुलना मे वैश्या वृत्ति मिलावट की तुलना मे मूल्य नियंत्रण और अपराध नियंत्रण की जगह शराब बंदी मांस बंदी जैसे कानून बनाने के प्रयास किये जाते है। जीव दया जैसे अनावश्यक कानून भी भारत मे बनाकर रखे जाते है। आपराधिक मुकदमे भले ही बीस तीस वर्ष तक चलते रहे किन्तु महिलाओ से छेडछाड या हरिजन आदिवासी अत्याचार के मुदकमे त्वरित निपटाने के प्रयास किये जाते है। तंत्र से जुडे तीनो भाग अपराधियों के प्रति लोक तांत्रिक बने रहने का शत प्रतिशत प्रयत्न करते है किन्तु अपराध पीडित व्यक्ति को न्याय के लिये समाज पर छोड देते है। किसी अपराधीके साथ अन्याय न हो इस बात की पूरी कोशिश की जाती है। भले ही वह न्याय किसी निरपराध के प्रति अन्याय ही क्यो न हो। परिणाम होता है कि समाज महसूस करने लगता है कि कानून मे असीमित विलंब है, न्याय की कोई उम्मीद नही है, भीड ही उसे सुरक्षा दे सकती है इसलिये वह हिंसा पर विश्वास करने लग जाता है। छोटे से छोटे गांव से शहर तक लोग अपनी सुरक्षा के लिये किसी स्थानीय दबंग के साथ इसलिये जुड जाते हे कि वह दबंग कम से कम उसके साथ अन्याय नही करेगा और दूसरे से होने वाले अन्याय मे उसे सुरक्षा भी देगा। इस तरह सरकार और कानून की तुलना मे उसे दबंगो से अधिक सुरक्षा की गारंटी भी मिलती है।

समाधान बहुत कठिन है। समस्या विश्व व्यापी तो है ही किन्तु भारत के लिये तो नासूर का रूप ले चुकी है। कुछ कठोर कदम उठाने होगे। कानून पर विश्वास बढे इसके लिये कानून को मजबूत और परिणाम मूलक बनाना होगा । सुरक्षा और न्याय या तो राज्य की सर्वोच्च प्राथमिकता बनायी जाय अथवा इसके लिये एक अलग से विभाग हो जिसे कोई अन्य कार्य न दिया जाये। अपराध को ठीक ढंग से परिभाषित किया जाये । कानूनी या अनैतिक कार्यो को अपराध से बाहर कर दिया जाये। न्यायपालिका इतनी मजबूत हो कि वास्तविक या फर्जी एनकाउंटर की आवश्यकता न पडे।विशेष समस्या ग्रस्त जिलो मे गुप्त मुकदमा प्रणाली के रूप मे विशेष न्यायिक प्रावधान लागु किये जाये जिससे दबंग लोगो के अंदर डर पैदा हो। स्वाभाविक है कि गुप्त मुकदमा प्रणाली का डर समाज मे कानून के प्रति विश्वास पैदा करेगा । ये छोटे छोटे दो तीन कार्य समाज मे बढते हिंसा के प्रति विश्वास से मुक्ति दिला सकते है।

सामयिकी

एक सामान्य सी घटना को सोनिया गांधी की मूर्खता ने इतना अधिक महत्व पूर्ण बना दिया कि वह सारे देश के लिये उत्सुकता का केन्द्र बन गई। संघ एक संगठन है। संगठन का एक चरित्र होता है कि यदि उसको कोई सदस्य बिना उसकी सहमति के किसी विरोधी संगठन से सम्पर्क करता है तो संगठन उसके कार्य को गंभीर अनुशासन हीनता मानता है। किन्तु यदि विरोधी संगठन का कोई सदस्य संगठन की आंशिक भी प्रशंसा कर दे तो संगठन उसे भगवान के समान सम्मान देता हैं। संघ का भी ऐसा ही चरित्र रहा है। किन्तु कांग्रेस पार्टी की स्थिति तो उससे भी ज्यादा खराब है। वह तो एक संगठन से भी आगे बढकर एक परिवार की दुकान के समान काम कर रही है। वहां सोनिया मालिक है और अन्य लोग सहयोगी। दुनिया जानती है कि प्रणव मुखर्जी सोनियां जी की तुलना मे अधिक राजनैतिक योग्यता के व्यक्ति थे किन्तु वे सोनिया जी के प्रति कुछ कम वफादार माने गये। राष्टपति बनने के बाद उन्होने स्वयं को दलगत राजनीति से मुक्त स्वतंत्र मान लिया जबकि सोनिया जी की कांग्रेस उन्हे पार्टी के प्रति वफादार ही समझती रही। कुछ माह पूर्व ही राष्टपति प्रणव मुखर्जी ने कांग्रेस पार्टी द्वारा संसद न चलने देने को जब खराब कहा था तब भी कांग्रेस प्रणव मुखर्जी से जल भुन गई थी। प्रणव जी ने बिना कांग्रेस अर्थात सोनिया जी से पूछे संघ का आमंत्रण स्वीकार कर लिया और सोनियां जी ने इस आरोप को आधार बनाकर प्रणव जी को अनुशासन हीन घोषित कर दिया।

इस प्रकरण मे कांग्रेस के लोगो को चुपचाप और आंतरिक चर्चा तक ही सीमित रहना था किन्तु इन सबने खुलकर विरोध किया । इन्होने प्रणव जी की कांग्रेसी सांसद पुत्री को भी लपेट लिया जिसकी उसे सफाई देनी पडी। प्रणव जी को निपटाना कांग्रेस को बहुत भारी पडा। संघ के हजारो कार्यकर्ता का वर्षो का परिश्रम तथा प्रणव जी द्वारा की गई संघ की भूरि भूरि प्रशंसा संघ का जितना विस्तार नही कर पाती उतना काम कांग्रेस पार्टी की इस एक मूर्खता ने कर दिया। प्रणव जी का भाषण भी बहुत स्पष्ट और नपा तुला था। साथ ही मोहन भागवत जी भी बहुत सधे शब्दो का प्रयोग कर रहे थे। दूसरी ओर कांग्रेस के लोग भाषण मे से संघ की प्रशंसा या विरोध की बात की प्रतीक्षा ही करते रह गये ओर भाषण समाप्त हो गया। कांग्रेस और वामपंथियो का मानना था कि यदि प्रणव जी संघ की प्रशंसा कर देगे तो प्रणव जी से पिंड छूट जायेगा और यदि आलोचना कर देंगे तो संघ प्रणव के रिशते खराब हो जायेगे किन्तु किसी को प्रणव जी ने कोई अवसर नही दिया। मेरे विचार से सोनिया जी इतनी अनाडी नही है किन्तु परिवार वाद और पुत्र मोह के कारण उनसे ऐसी गंभीर गलती स्वाभाविक है और अब इस संबंध मे उन्हे और सावधान रहना चाहिये। परिवार वाद और पुत्रमोह उन्हे तो ले डुबेगा ही कांग्रेस को भी आगे नही बढने देगा।

सामयिकी

मैने लगभग दस वर्ष पूर्व भारत मे तेरह अच्छे और तेरह गलत राजनेताओ की सूची प्रकाशित की थी। तेरह अच्छे लोगो मे नीतिश कुमार, अखिलेश यादव, अरविन्द कजरीवाल, नरेन्द्र मोदी मनमोहन सिंह , ए के एंथोनी बुद्धदेव भटटाचार्य आदि के नाम थे तथा गलत तेरह मे प्रकाश करात ममता लालू मुलायम मायावती सहित अन्य नाम थे। उस सूची मे राहुल गांधी को एक बहुत शरीफ व्यक्ति और असफल राजनेता के रूप मे लिखा गया था। उस सूची मे प्रणव मुखर्जी सोनियां गांधी आडवानी आदि का किसी तरफ नाम नही था। मै समझता हूँ कि अब भी उस सूची मे अरविन्द केजरीवाल का नाम हटाकर प्रणव मुखर्जी का जोडा जा सकता है।

उस सूची मे मैने अखिलेश यादव को अच्छे राजनेताओ मे शामिल किया था और अब भी मेरी धारणा वैसी ही है। सरकारी बंगला खाली करने के संबंध मे उन्होने जो गलती की उसका मुझे कष्ट हुआ। उन्हे बंगला खाली करने मे देर नही करनी चाहिये थी । साथ ही उन्हे बंगले से ले जाने वाले सामान के विषय मे भी कुछ अधिक सकर्त रहना चाहिये था। फिर भी मै इस गलती को साधारण गलती मानता हूँ। मेरे मन मे उनके प्रति अब भी उतने ही अच्छे विचार है । उन्होने बंगले मे हुए नुकसान के संबंध मे जो उत्तर दिया है वह भी बहुत शालीन था। कोई भी अन्य नेता इतनी शालीनता से उत्तर नही देता फिर भी उन्हे ऐसे मामलो मे अधिक सावधान रहना चाहिये।

सामयिकी

जिस तरह इस्लाम एक संगठन है उसी तरह सिख भी एक संगठन है। सिखो ने हिन्दुओ की सुरक्षा के लिये ऐतिहासिक बलिदान दिये। उन बलिदानियों की वर्तमान पीढी अब येन केन प्रकारेण उक्त बलिदान के नाम पर विशेष अधिकार चाहती है। स्वतंत्रता के बाद लगातार ऐसी ब्लैकमेलिंग के प्रयास हुए जिसे समय समय पर भारत की सरकारो ने संतुलित किया । कई बार भारत सरकार को लीक से हटकर भी प्रयत्न करने पडे। आपरेशन ब्लू स्टार, चौरासी के हजारो निर्दोष सिखो की हत्या तथा पंजाब के आतंकवाद को गैर कानूनी तरीके से कुचलने का प्रयास ऐसे ही तरीको मे शामिल है।

अरविन्द केजरीवाल के विषय मे यह आम धारणा है कि वे राजनैतिक सत्ता के लिये शैतान का भी समर्थन कर सकते है। पंजाब मे अपना पैर जमाने के लिये सिख उग्रवाद का समर्थन करने की बाते पूर्व मे भी कई बार उठ चुकी है। ऐसा प्रोत्साहन देखकर पंजाब के कुछ उग्रवादी सिखों ने सिखिस्तान के लिये जनमत संग्रह की आवाज उठाई जिसका पंजाब की आम आदमी पार्टी प्रमुख ने समर्थन किया। बाद मे उन्होने मामूली स्पष्टीकरण भी बदला किन्तु फिर भी उनकी भावना स्पष्ट दिखी।

पंजाब की कांग्रेस सरकार इस बात के लिये बधाई की पात्र है कि उसने ऐसी किसी मांग का कठोरता से विरोध करने का फैसला किया । मेरा मानना है कि यदि ऐसे किसी प्रयत्न को रोकने के लिये पंजाब कांग्रेस भाजपा को एक जुट होना पडे तो होना चाहिये। अरविन्द केजरीवाल को भी किसी राजनैतिक सत्ता के लिये ऐसे खतरनाक मंसूबो का समर्थन करने से दूर रहना चाहिये।

डायलाग इंडिया से एक अपेक्षा

डायलाग इंडिया एक गंभीर पत्रिका है जिसमे अनेक अच्छे विद्वानो के सुलझे हुए लेख प्रकाशित होते है। मई 2018 के अंक मे लेखक अमीत त्यागी जी ने राजनीति का शिकार न्यायपालिका लेख का समापन करते हुए यह अंश लिखा है।

राहुल गांधी और विपक्ष अगर न्यायिक व्यवस्था मे वास्तविक बदलाव चाहते है तो भारतीय सिविल सेवा की तरह भारतीय न्यायिक सेवा की तरफ क्यो अपना ध्यान नही लगाते है? वर्तमान मे न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया पर सवाल उठते रहते है। अंग्रेजो के समय बने कानूनो को हम क्यो नही खत्म करते है? भारतीयता आधारित संवैधानिक एंव कानून व्यवस्था क्यो नही लागू करते है। पर ऐसा सरकार मे रहते कोई नही कर सकता है। न तो राहुल गांधी कर सकते है और न उनके पूर्वज कर पायें। यहां तक कि भाजपा सरकार मे मोदी भी नही। उसकी वजह है कि 1947 मे भारत आजाद नही हुआ था सिर्फ सत्ता का स्थानांतरण हुआ था । भारत को 99 साल के पटटे पर अंग्रेज भारत को सौप कर गये थे। भारत मे विपक्ष में रहने पर तो सभी दल खूब हो हल्ला करते है किन्तु सत्ता मे आने पर लाचार हो जाते है। भारत के संविधान मे एक शब्द डॉमिनियन रिपब्लिक है उसका अर्थ है कि आज भी भारत ब्रिटेन का एक उपनिवेश है। व्यवस्था मे बदलाव के लिये सम्पूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता है जिसमे सत्ता पक्ष और विपक्ष का एक साथ आना पहली शर्त है । पर ऐसा होता हाल फिलहाल तो नही दिख रहा है।

समीक्षा– मेरे विचार से भारत की स्वतंत्रता सम्पूर्ण प्रभुसत्ता है, 99 वर्ष का पटटा नही । इसलिये मै इस विषय पर पत्रिका के संपादक या अन्य विद्वानो से और अधिक जानकारी चाहता हूँ कि उक्त विचार सही है या लेखक की अपनी सोच।

पत्रोत्तर

1. चितरंजन भारती पंचग्राम, आसाम

विचार– ज्ञान तत्व क्रमांक 367 मे मंथन पढ रहा हूँ। तथ्यो घटनाओ का आप यूं विश्लेषण करते है कि वह सीधे मन मस्तिष्क को तरंगित कर जाता है। आपके विचार मंथन और अनुभवो का मैने व्यक्तिगत लाभ उठाया है। आपके सुझावो पर मननोपरांत उसपर अमल किया तो उसकी सार्थकता सामने आ जाती है। जैसे भूत प्रेत संबंधी विश्वास । आपने सही निर्देश दिया कि इनके अस्तित्व के होने न होने की बहस से दूर रहा जाये। असम मे भूत प्रेत तंत्र मंत्र का इतना नाम रहा । फिर भी यह ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बन बया। विदेशी समस्या जस के तस है।

भारतीय समाज मे दो धाराए थी गांधी और अंबेडकर की । दोनो एक दूसरे से सहमत भी थे। कटटर हिन्दू सांप्रदायिकता ने इसमे दखल कर गुड गोबर सा कर दिया। वर्तमान मे हिन्दू समाज पुनः दो वर्गो द्विज एंव अन्त्यज मे बंटता जा रहा है। भाजपा इसे खत्म करना चाहती है। मगर इसी के कुछ नेता इसे हवा दे रहे है। सांम्प्रदायिकता का जहर अपनी जगह ही है। इन दोनो धाराओ पर लगाम लगाने का कार्य लोकतंत्र पर यानी विधायिका कार्यपालिका न्यायपालिका पर है। प्रेस तो सिर्फ तमाशा देखने दिखाने भर के लिये है। ऐसे माहौल मे आपका चिंतन मनन हमारे काम आ सकता है।

2 क एम. एल. चौहान, बालाघाट, मध्य प्रदेश

सुप्रिम कोर्ट के फैसले ने देश को भारी नुकसान पहुँचाया । केन्द्र सरकार के कथित अनुसूचित जाति अनु. जनजाति के जनहित एक्ट पर सुप्रीम कोर्ट दिल्ली द्वारा जारी किये गये निर्देर्शो अनु जाति/जनजाति अत्याचार निवारण कानुनो से संबंधित उसके फैसले उसके प्रावधानो को कमजोर किया है जिसने देश को बहुत नुकसान पहुँचाया तो केन्द्र की तरफ से अटॉरनी जनरल श्री के के वेणु गोपाल ने सर्वोच्च अदालत ने संवेदन शील प्रकृति के मुददे पर विचार कर उक्त फैसले पर बैचेनी क्रोध असहजता और कटुता पैदा कर दी जिससे आपसी सौहाद्र पूर्ण वातावरण दूषित हुआ है।

कार्यपालिका न्यायपालिका और विधायिका को इनका उलंघन नही करना चाहिये अर्थात 20 मार्च 2018 के फैसले पर पुनः विचार करना चाहिये। सरकार ने 20 मार्च के फैसले पर पुनः विचार करने तथा पुनः अपने दिशा निर्देशो को वापस लेने को सरकार ने कोर्ट से अनुरोध किया है।

इस मुददे पर आपका क्या विचार मंथन है? कृपया हमे अपने सुविचारो से जरूर जरूर अवगत कराने की महान दया करें।

2 ख सत्यपाल शर्मा, बरेली, उत्तर प्रदेश

दलितो के मान सम्मान की रक्षा और उन पर होने वाले अत्याचार को रोकने के लिये 1980 मे अनुसूचित जाति जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम संसद द्वारा पारित करके लागू किया गया । इस कानून का दुरूपयोग होने लगा और सवर्ण जाति के नागरिको का घोर उत्पीडन होने लगा। सुप्रीम कोर्ट ने एस सी एस टी एक्ट मे तुरंत गिरफ्तारी पर रोक लगा दी और यह व्यवस्था दी कि शिकायत मिलने पर पुलिस उपाधीक्षक स्तर के अधिकारी एक हफ्ते के अंदर प्रारंभिक जांच करेगे और संतुष्ट होने पर ही गिरफतारी होगी। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि निर्दोष नागरिको को संरक्षण मिलना चाहिये ताकि उनको बेवजह गिरफ्तार करके जेल मे न डाला जा सके । निर्दोष नागरिको का शोषण चाहे वे किसी भी जाति धर्म के हो संविधान के खिलाफ है। एस सी एस टी एक्ट के तहत बडी संख्या मे मामले झुठे पाये गये और आरोपी न्यायालय से बरी किये गये। देश के किसी भी नागरिक का शोषण उत्पीडन चाहे वह किसी भी जाति धर्म सम्प्रदाय का हो अनुचित हैं। सुप्रीम कोर्ट के फैसले से मोदी सरकार को बडी बेचैनी हो गई है और केन्द्र सरकार वोट बैक के लालच मे न्याय का गला दबाने के लिये सुप्रीम कोर्ट मे पुनः विचार याचिका दायर करके समाज को इंसाफ देने वाले निर्णय को बदलवाने का हर प्रकार का प्रयास कर रही है। मोदी जी को इंसाफ से ज्यादा कुर्सी प्यारी है । आपके विचार की प्रतीक्षा है।

उत्तर – चौहान जी और सत्यपाल जी के विचार अलग अलग है। मेरे विचार कुछ और अलग है । यह सही है कि स्वतंत्रता के पहले लम्बे समय तक सवर्णो ने श्रम शोषण के उददेश्य से अवर्णो अर्थात श्रमजीवियो आदिवासियो तथा अछूतो का शोषण किया । यदि स्वतंत्रता के तत्काल बाद समान नागरिक संहिता लागु कर दी जाती तथा श्रम मूल्य बढने दिया जाता तो स्थिति ठीक हो सकती थी किन्तु न सवर्णो की नीयत ठीक थी न सवर्ण नेताओ की न ही अम्बेडकर जी की। यही कारण था कि सवर्ण और अवर्ण बुद्धिजीवियो ने मिलकर श्रम शोषण के उददेश्य से आरक्षण के फार्मूले पर सहमति व्यक्त की । सभी बुद्धिजीवी नेताओ की नीयत खराब थी । इस खराब नीयत के दुष्परिणाम हुए और अब 70 वर्षो के बाद टकराव बढ रहा है। सबसे अच्छा मार्ग तो यह होगा कि कृत्रिम उर्जा की भारी मूल्य वृद्धि करके सब प्रकार के आरक्षण समाप्त कर दिये जाये । किन्तु कोई भी सवर्ण अवर्ण बुद्धिजीवी इसके लिये तैयार नही है। क्योकि कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि होते ही श्रम शोषण बंद हो जायेगा। यदि ऐसा नही होता है तो आरक्षण से पैदा हो रही विसंगतिया दूर नही हो सकेगी । अल्प संख्यक समुदाय राजनैतिक विपक्ष के साथ जुडकर अवर्णो का सवर्णो से अलगाव देखना चाहता है जिससे अल्प संख्यक विपक्ष और अवर्ण मिलकर राजनैतिक बहुमत बना सके। वर्तमान सरकार इस संभावित खतरे को टालना चाहती है और किसी भी कीमत पर इस गठजोड को रोकना चाहती है। ऐसी परिस्थितियों मे इस सरकार के सामने या तो स्वयं को समाप्त करने का विकल्प है अथवा अवर्ण नेताओ से व्लैक मेल होने का । भारत का सवर्ण इन परिस्थितियो पर विचार नही कर रहा । सबसे अच्छा मार्ग कृत्रिम उर्जा के मूल्य वृद्धि और साथ ही समान नागरिक संहिता का है। मेरा विचार है कि आरक्षण पर पक्ष विपक्ष की चर्चा श्रम शोषण की बुरी नीयत का परिणाम है। इसलिये इस संबंध मे कोई एक राय देना उचित नही।